अध्याय – प्रथम

शोध परिचय

1.1 भूमिका –

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बालक एवं बालिकाओं को 10 वर्ष में अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध करने का लक्ष्य रखा गया था। लेकिन 54 वर्ष की लंबी अवधि बीत जाने के बाद भी आज तक प्रारंभिक शिक्षा के लोक व्यापीकरण का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाये हैं। 1986 की शिक्षा नीति में इस स्थिति की समीक्षा की गई थी, और प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए एक लक्ष्य वर्ष 2000 निर्धारित किया गया था। आज शिक्षा का परिदृश्य 'अपेक्षाकृत' निराशाजनक है। किसी भी कोण से देखें संवैधानिक लक्ष्य आज भी दूर के सपने हैं । सन् 1991 में साक्षरता की दर 52–51 प्रतिशत थी। कुल मिलाकर 60.8 प्रतिशत बालिकाएं निरंक्षर थी। ग्रामीण क्षेत्रों में निरंक्षर बालक एवं बालिकाएं 69.7 प्रतिशत थे । वर्ष 1993–94 में 6–11 एवं 11–14 आयु वर्गो के सफल नामांकन क्रमशः 74.5 और 67.7 प्रतिशत थे। कक्षा 1 से 5 में शिक्षा त्याग की कुल दर 70.9 प्रतिशत तथा बालिकाओं के लिए और भी अधिक 74.9 प्रतिशत थी। इसका तात्पर्य है कि सिर्फ 30 प्रतिशत छात्र–छात्राएं ही प्रारंभिक शिक्षा पूरी कर पाते हैं । अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए साक्षरता की कुल दरें क्रमशः 37.4 प्रतिशत और 29.6 प्रतिशत थी। कक्षा 1–5 व 6–8 में अनुसूचित जातियों के लिए सफल नामांकन अनुपात क्रमशः107.3 और 60.13 प्रतिशत थे, जबकि अनुसूचित जनजातियों के लिए यह अनुपात क्रमशः 106.97 और 47.99 प्रतिशत थे।

इन आंकड़ों के आधार पर आबादी के विभिन्न भागों के बीच जो सुस्पष्ट अंतर पाये जाते हैं, वे इस अप्रिय सत्य को स्वीकार करने के लिए मजबूर करते हैं कि जनता की शिक्षा पर दिये गये ध्यान तथा बालिकाओं और अन्य वंचित समूहों की शिक्षा पर दिये जाने वाले विशेष ध्यान के बावजूद बहुत सा काम अभी भी बाकी है। सार्वभौम प्रारंभिक शिक्षा का लक्ष्य अभी भी पहले जितना ही दूर है। गुणवत्ता को लेकर भी स्थिति उत्साहजनक नहीं है। शिक्षा शास्त्र की दृष्टि से शिक्षा का बुनियादी उद्‌देश्य व्यक्ति का

सर्वांगीण विकास करना हैं। सच्ची शिक्षा व्यक्ति में निहित पूर्णता को सामने लाती हैं। यह केवल अभाव और निर्धनता ही नहीं, तमाम पतित गुणों, जैसें भय, लोभ, वासना, ईर्ष्या, हिंसा आदि से व्यक्ति को मुक्त बनाती है और इस प्रकार शिक्षित व्यक्ति को बेहतर मानव में परिवर्तित कराती है। जाहिर है, परिणाम एवं गुणवत्ता दोनों ही दृष्टि से अभी सुधार की बहुत अधिक जरूरत हैं । प्रस्तुत लघुशोध में कुछ मुख्य मुद्दे और सरोकार उठाकर गंभीर शिक्षा शास्त्रीय चिंतकों, शोध कर्ताओं, योजनाकारों, प्रशासकों आदि का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया गया है।

इसके अतिरिक्त शिक्षा तंत्र में गुणवत्ता को लेकर भी स्थिति उत्साहजनक नहीं है। शिक्षा शास्त्र की दृष्टि से शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है, तथा बालक का सामाजिक, नैतिक तथा आर्थिक विकास करना हैं । जिज्ञासा मनोवृत्ति तथा कौशल का विकास करते हुए, समाज का आधुनिकीकरण करना हैं।

स्पष्ट है कि परिणाम एवं गुणवत्ता दोनों ही दृष्टि से अभी सुधार की बहुत अधिक आवश्यकता है। इसी प्रकार शिक्षा के सार्वजनिक एवं गुणवत्ता सुधार, विभिन्न पहलुओं में पाठ्यपुस्तकों के परंपरागत दृष्टिकोंण की प्रकृति में भी परिवर्तन आवश्यक है, जिससे विद्यार्थी विभिन्न परिभाषाओं अवधारणाओं सिद्धधांतों, प्रयोगों, विश्लेषण अवलोकन एवं निष्कर्ष को आसानी से ग्रहण कर सकें ।

1.1.1 हिन्दी के विषय में विभिन्न आयोगों के विचार –

शिक्षा में हिन्दी भाषा के महत्व को स्पष्ट करते हुए विभिन्न आयोगों ने अपने–अपने विचार प्रस्तुत किये है –

राधाकृष्णन आयोग (1948–49) राधाकृष्णन आयोग ने शिक्षा में हिन्दी भाषा के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि –

1. उच्च्व शिक्षा का माध्यम यथाशीघ्र अंग्रेजी को हटाकर किसी संपन्न भारतीय भाषा को बनाया जाय।
2. उच्च्व शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा हो, परन्तु एक या अधिक विषयों के अध्ययन का माध्यम राष्ट्रभाषा को चुना जाए। अर्थात् हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है जो हिन्दी के महत्व को स्पष्ट करता है।

मुदलियार आयोग (1952–53) मुदलियार आयोग ने शिक्षा में हिन्दी भाषा के महत्व को स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित सुझाव दिये हैं –

1. मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा ही शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार की जाए, परन्तु अल्पभाषी विद्यार्थी के लिए केन्द्रीय परामर्शदात्री समिति द्वारा प्रस्तुत सुझावों को स्वीकार किया जाए।
2. माध्यमिक स्तर पर एक तो मातृभाषा तथा दूसरी अन्य कोई आधुनिक भारतीय भाषा पढ़ाई जानी चाहिए।

कोठारी आयोग (1964–66) कोठारी आयोग ने निम्न सुझाव दिये –

1. हिन्दी संघ की राष्ट्रभाषा है, और आशा है कालांतर में वह देश की जनभाषा बन जायेगी। अतः भाषा पाठ्यचर्या में मातृभाषा के बाद इसका ही स्थान होगा।
2. हिन्दी या अंग्रेजी को दूसरी भाषा के रूप में अनिवार्यतः किसी अवस्था से शुरू किया जाए और वह स्थानीय अभिप्रेरणा और आवश्यकता पर निर्भर करती हैं और इसे प्रत्येक राज्य के विवेक पर छोड़ देना चाहिए। भारत के संविधान में हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। संविधान में राजभाषा संबंधी कई संवैधानिक उपबंध है –

संविधान के भाग –17 के

अनुच्छेद 343– में कहा गया है कि संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी ।

अनुच्छेद 351– में हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार और उसके विकास के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण निर्देश दिये गए हैं जिनमें कहा गया है कि :–

"संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करें ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके ।"

अनुच्छेद 344 –के अनुसरण में 1955 में राजभाषा आयोग की नियुक्ति की गई जिसकी परीक्षा के लिए इस अनुच्छेद के खंड–4 के अनुसार लोकसभा से 20

और राज्यसभा से 10 सदस्यों की एक संसदीय समिति गठित की गई, जिसने अपनी रिपोर्ट 08–02–1959 को प्रस्तुत की।

1975 ई. में गृह मंत्रालय के अंतर्गत राजभाषा विभाग की स्थापना की गई, जिससे केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में हिन्दी के प्रयोग को तेजी से बढ़ाया जा सके ।

केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों और उनके अधीन निगमों, उपक्रमों तथा कंपनियों में राजभाषा हिन्दी का प्रचार–प्रसार बढ़ाने के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया गया है जो निम्न प्रकार है :–

केन्द्रीय हिन्दी समिति –

प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित यह एक उच्च समिति है, जिसमें महत्वपूर्ण मंत्रालयों और कुछ मुख्यमंत्रियों तथा कुछ संसद सदस्यों और हिन्दी सेवी संस्थाओं के प्रतिनिधि होते है, और इस समिति का निर्णय मंत्रीमंडल का निर्णय माना जाता है।

हिन्दी सलाहकार समितियाँ –

सभी मंत्रालयों के मंत्रियों की अध्यक्षता में हिन्दी सलाहकार समितियों का गठन किया गया है। जिनकी बैठके तीन महीनों के बाद होती हैं। इनमें नामित संसद सदस्यों के आलावा स्वयंसेवी हिन्दी संस्थाओं के सदस्य भी होते हैं। यह समिति अपने–अपने मंत्रालयों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए परामर्श देती है।

राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ –

प्रत्येक विभाग और कार्यालय में राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ होती है जो संबंधित विभागों और कार्यालयों में हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की समीक्षा करती हैं, और राजभाषा कार्यान्वित करती है। इसकी बैठके तीन महीने में एक बार होती हैं ।

1.1..2 हिन्दी भाषा शिक्षण का स्वरूप –

भारत एक बहु भाषा–भाषी देश है। यहाँ अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं । व्यापक क्षेत्र में जन सामान्य द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी आज संपर्क भाषा का कार्य कर रही हैं । जब दो भिन्न भाषा–भाषी भारतीय परस्पर मिलते हैं तो सामान्यतः हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं यही कारण हैं कि आज हिन्दी के विभिन्न क्षेत्रीय रूप विकसित हो गये हैं या हो रहे हैं। हिन्दी हमारे देश की प्रमुख भाषा है जिसे हिन्दी भाषी प्रदेशों में मातृभाषा या प्रथम भाषा के रूप में हिन्दी भाषी क्षेत्रों में द्वितीय/तृतीय भाषा के अंतर्गत पढ़ाया जाता है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी के शिक्षण का विशेष महत्व है। इसका कारण यह है कि हिन्दी सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक, राजनैतिक, प्रशासनिक आदि क्षेत्रों में विचारों के आदान–प्रदान का प्रमुख माध्यम भाषा ही है।

अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग की परम्परा प्राचीन है। शताब्दियों से यह जनसंपर्क की भाषा शिक्षा, ज्ञान–विज्ञान साहित्य सृजन, संगीत, नाट्य आदि की अभिव्यक्ति की भाषा रही हैं । इसलिए इसे भारतीय संविधान द्वारा केन्द्रीय सरकार की राजभाषा के रूप में मान्यता दी गई हैं ।

1.1.3 शिक्षा में हिन्दी भाषा का महत्व –

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उनके सामाजिकरण में भाषा का पूरा योगदान होता हैं। यह माना जाता है कि मानव में भाषा अर्जन और भाषा व्यवहार की सहज क्षमता रहती हैं। इसके कारण ही वह जन्म से ही भाषा को अर्जित करना प्रारंभ कर देता है। सबसे पहले वह अपने परिवेश में प्रचलित भाषा को सीखता है। अहिन्दी भाषी क्षेत्र में हिन्दी भाषा द्वितीय भाषा के रूप में विद्यालय में पढ़ाई जाती है। इस भाषा का विशेष महत्व रहता हैं । भिन्न–भिन्न राज्यों के व्यक्ति एक दूसरे के संपर्क में रहने के लिए हिन्दी भाषा अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती हैं । शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे नवीन परिवर्तन के साथ–साथ अनेक नवीन

खोजों को भाषा के माध्यम से अहिन्दी भाषी क्षेत्र के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को जानकारी मिलती हैं। राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा पर शिक्षा को लेकर हो रहे संगोष्ठी, कार्यप्रणाली में विद्यार्थी आसानी से भाग ले सकते हैं । यह सब तभी संभव हो सकेगा जब हिन्दी भाषा की उपलब्धि अहिन्दी भाषा क्षेत्र के विद्यार्थियों में प्राथमिक स्तर से ही अच्छी होगी। राष्ट्रीय स्तर पर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अभ्यास के लिए हिन्दी भाषा अत्यंत उपयोगी है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में हो रही नवीन क्रान्ति तथा प्रयोग के लिए हिन्दी भाषा का अपना विशिष्ट महत्त्व है। दुर्भाग्य की बात है कि विदेशी भाषा के मोह में पड़कर हम अपनी भाषा से दूर हो रहे हैं और अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से अपरिचित रहकर हीनता से ग्रस्त होते जा रहे हैं।

1.1.4 भारतीय बहुभाषा समाज[1] –

भारत वर्ष में अनेक भाषाएं प्रचलित हैं जो इस प्रकार है–

हिन्दी – सिंध से फारसी में हिन्द बनता है, जैसे सप्त से हफ्त। बाद में सिंध और हिंद की परिभाषा में भेद किया गया। सिंधु नदी के दक्षिणी सिरे पर दाहिने – बायें बसा हुआ क्षेत्र तो सिंध कहलाया और सारी सिंधु नदी के पार उत्तर और दक्षिण में अपनी प्राकृतिक सीमाओं तक और पूर्व में राजनीतिक सीमा तक के विशाल देश को नाम 'हिन्द' पड़ा। हिन्द की भाषा का नाम हिन्दी है।

यह नहीं कहा जा सकता कि संकुचित अर्थ में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग कब से होने लगा। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, बिहारी आदि तो इसको भाषा कहते रहे हैं।

यह हिन्दी ऐतिहासिक दृष्टि से युग–युग की मध्यदेशीय भाषाओं–संस्कृत, पालि, प्राकृत की उत्तरधिकारिणी है। यह भाषाएं मध्यदेशीय होते हुए भी देशव्यापी रही है। निचे प्रमुख आधुनिक आर्यभाषाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है –

---

1. तिवारी बी.एन. (1974) भाषा विज्ञान इलाहाबाद, किताब महल

(1) सिन्धी – सिन्धी सन् 1947 से पूर्व भारत के सिंध प्रांत की भाषा थी। भारत पाकिस्तान विभाजन के बाद से इसके बोलने वाले पाकिस्तान के सिंध प्रांत में तथा भारत के कच्छ, अजमेर, बम्बई तथा दिल्ली आदि में है। सिंधी की अपनी लिपि 'लंड़ा' है किन्तु अरबी के एक संशोधित रूप तथा गुरूमुखी लिपि का भी प्रयोग होता है । भारत में अब इसके लिए नागरी का भी प्रयोग हो रहा है। इसमें बिचोली, सिरैकी, लारी, थलेरी, और, कच्छी पॉच प्रधान बोलियॉ हैं।

इन पॉचों में प्रमुख बिचोली है जो आज वहां की साहित्यिक भाषा बन गई है। कच्छ द्वीप में कच्छी बोली जाती है, जिस पर गुजराती का प्रभाव अधिक हैं।

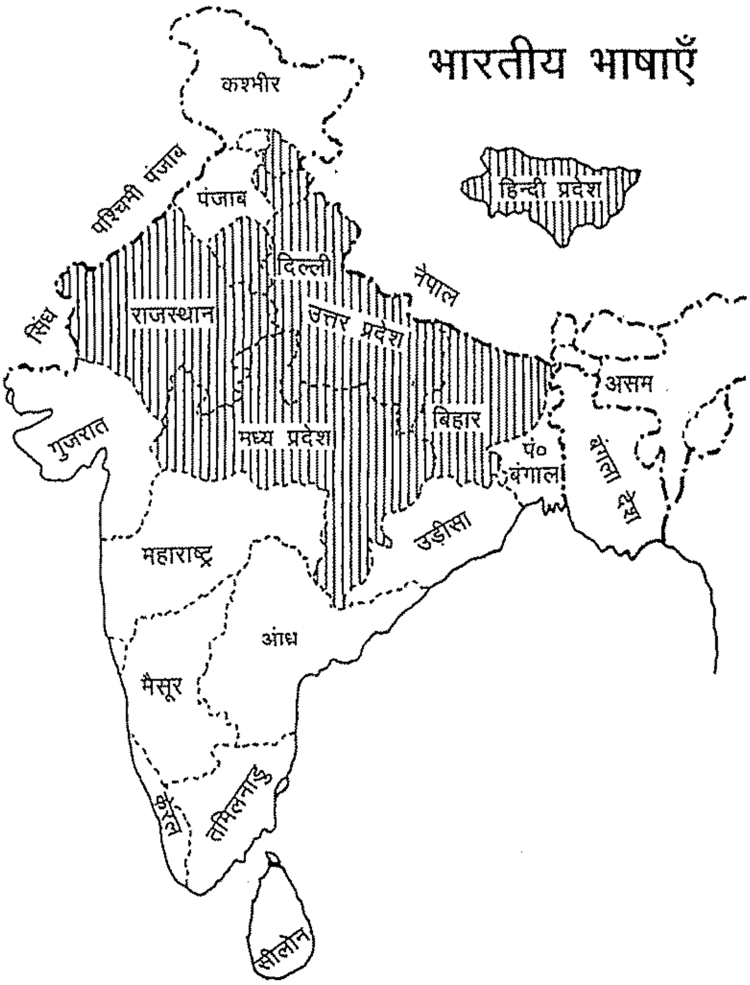

(2) लहॅंदी –पैशाची या केकय अपभ्रंश से पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) तथा पूर्वी पश्चिमोत्तर प्रदेश की भाषा पश्चिमी पंजाबी या लहॅंदा का विकास हुआ है । इस पर दरद शाखा का प्रभाव अधिक पड़ा हैं। लहंदा, डिलाही, जटकी, हिंदकी या उच्ची भी इसी के नाम है। 'लहंदा' का शाब्दिक अर्थ पश्चिमी है। इसकी चार बोलियॉ लहँदा, मुल्तानी, पोठवारी और धन्नी है ।

(3) पूर्वी पंजाबी –पूर्वी पंजाबी या पंजाबी प्राचीन मध्य पंजाब की भाषा है। इनकी प्रसिद्ध बोली डोग्री है, जो टाकरी लिपि में लिखी जाती है।

(4) पहाड़ी – खश अपभ्रंश से पहाड़ी भाषाएं निकली हैं। इनकी लिपि नागरी है । ये हिमालय के निचले भाग में बोली जाती है।

(5) सिंहली तथा माली –सौराष्ट्री तथा आसपास की भाषा से सिंहली का संबंध है।

(6) गुजराती – शैरसेनी अपभ्रंश के नागर रूप के पश्चिमी रूप से इसका विकास हुआ है। यह गुजरात, काठियावाड़ और कच्छ में बोली जाती है।

(7) भीली –राजस्थानी और गुजराती की सीमारेखा के आस–पास यह बोली जाती है। भीली का संबंध राजस्थानी और गुजराती से है।

(8) पश्चिमी हिन्दी –शौरसेनी अपभ्रंश से इसका विकास हुआ हैं। इसमें कन्नौजी बाँगरू, बुँदेली खड़ी बोली और ब्रज ये पाँच बोलियाँ हैं। खड़ी बोली (जो अपने साहित्यिक रूप से "हिन्दी" नाम से प्रसिद्ध हैं) ही भारत की राज्य भाषा है।

(9) पूर्वी हिन्दी – अर्ध मागधी अपभ्रंश से इसका विकास हुआ हैं। इसमें अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी तीन बोलियाँ है।

(10) राजस्थानी – इसमें मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी, आदि कई बोलियाँ हैं। इसका क्षेत्र प्रमुखतः राजस्थान है।

(11) बिहारी – मैथिली, मगही, भोजपुरी का यह वर्ग मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से उत्पन्न है। बिहारी का क्षेत्र बिहार और उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग है। लिपि नागरी, मैथिली तथा महाजनी है।

(12) बंगाली –मागधी अपभ्रंश के पूर्वी रूप से उत्पन्न है। इसके बोलने वाले भारत बंगाल प्रदेश तथा पूर्वी पाकिस्तान में है।

(13) उड़ीया –उड़ीसा प्रान्त की भाषा है। इसकी लिपि पुरानी नागरी ये निकली है, किन्तु द्रविड़ प्रभाव के कारण बहुत कठिन हो गई हे।

(14) असमी – मागधी के पूर्वोत्तरी रूप से विकसित असम प्रान्त की भाषा है। इसकी लिपि बंगला से कुछ ही भिन्न है।

(15) मराठी – महाराष्ट्री अपभ्रंश से निकली है। लिपि नागरी है। कोंकणी मराठी की एक बोली है, जिसे अब लोग अलग भाषा मानने लगे हैं।

(16) जिप्सी – भारत के कुछ खानाबदोश कंजर दूसरी सदी के लगभग यहाँ से पश्चिम चले गये थे। इनकी भाषा भारतीय आर्यभाषा है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के दो वर्ग है – हिन्दी और उसकी उपभाषाएं और 2. हिन्दीतर भाषाएँ (पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगला, असमी नेपाली और सिंहली)। साहित्यिक दृष्टि से बंगला में बहुमुखी साहित्य मराठी का संत साहित्य और आधुनिक कथा साहित्य, गुजराती का वैष्णव काव्य एवं आधुनिक उपन्यास साहित्य पंजाबी में सिख गुरूओं की वाणियाँ और मध्यकालीन किस्से, असमी का वैष्णव काव्य और इतिहास साहित्य, उड़िया के गीत सिन्धी के किस्से उल्लेखनीय है। हिन्दी की साहित्यक सम्पत्ति सबसे अधिक है।

1.1.5 प्रत्येक प्रांत की बोली भाषा[1] –

हिन्दी बोलियों में मारवाड़ी, राजस्थानी, अवधी ब्रजभाषा और खड़ीबोली, समय–समय पर साहित्य में प्रतिष्ठित रही हैं । इनका विस्तृत विवरण देते हुए अन्य सम्बद्ध बोलियों का परिचय और उनकी प्रमुख विशेषएँ नीचे दी जा रही है–

---

1. बाहरी एच.डी. (1980) हिन्दी उद्‌भव विकास और रूप इलाहबाद, किताब महल

पूर्वी खण्ड

पूर्वी हिन्दी

1. अवधी
2. बघेली
3. छत्तीसगढ़ी

बिहारी हिन्दी

1. भोजपुरी
2. मगही
3. मैथिली

पश्चिमी खण्ड

पश्चिमी हिन्दी

आकार बहुला

1. कौरवी
2. हरियाणवी
3. दक्खिनी

ओकार बहुला

1. ब्रजभाषा
2. बुंदेली
3. कन्नौजी

राजस्थानी हिन्दी

1. मारवाड़ी
2. जयपुरी
3. मेवाती
4. मालवी

पहाड़ी हिन्दी

1. कुमाऊनी
2. गढ़वाली

अवधी – अर्धमागधी ये विकसित पूर्वी हिन्दी बोलियों में अवधी सर्वप्रधान और प्रतिनिधि बोली है। अयोध्या से औध और अवध नाम बना है। हरदोई जिले को छोड़कर शेष सारे अवध प्रान्त (अर्थात् लखीमपुर, खेरी, बहराइच, गोंडा, बाराबंकी, लखनऊ, सीतापुर, उन्नाव, फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, और रायबरेली,) की बोली अवधी है। इसे बोलने वालों की संख्या 1 करोड़ 60 लाख के लगभग है।

बघेली– बघेली को अवधी की दक्षिणी शाखा कहना ही उचित होगा। इसका क्षेत्र उत्तर में मध्यप्रदेश–उत्तरप्रदेश की सीमा से लेकर दक्षिण में बालाघाट तक और पश्चिम में दमोह और बाँदा की पूर्वी सीमा से लेकर पूर्व में मिर्जापुर, छोटा

नागपुर और बिलासपुर की पश्चिमी सीमाओं तक फैला हुआ है। बघेली बोलने वालों की संख्या 50 लाख के लगभग है।

छत्तीसगढ़ी– कहते हैं कि मध्यप्रदेश के पूर्वोत्तर में पलामू (बिहार) की सीमा से लेकर दक्षिण में बस्तर तक और पश्चिम में बघेलखण्ड को छूता हुआ पूर्व में उड़ीसा की सीमा तक फैला हुआ जो क्षेत्र है, उसमें छत्तीसगढ़, रायगढ़, सारंगढ़, खैरागढ़, आदि बने थे। इन 36 गढ़ों को कारण उस भूखण्ड को छत्तीसगढ़ और बोली को छत्तीसगढ़ी कहा जाता है। इतिहास में इस क्षेत्र को दक्षिण कोसल, दण्डकारण्य और गौंडवाना कहा जाता है। चेदि राजाओं के नाम पर इसका नाम चेदीशगढ़ था। चेदीशगढ़ से लोक में छत्तीसगढ़ बन गया। इसके अंतर्गत सरगुजा, कोरिया, बिलासपुर, रायगढ़, खैरागढ़, रायपुर, दुर्ग, नांदगांव और काँकेर के मण्डल सम्मिलित हैं । छत्तीसगढ़ी बोलने वालों की संख्या 68 लाख के आस–पास है।

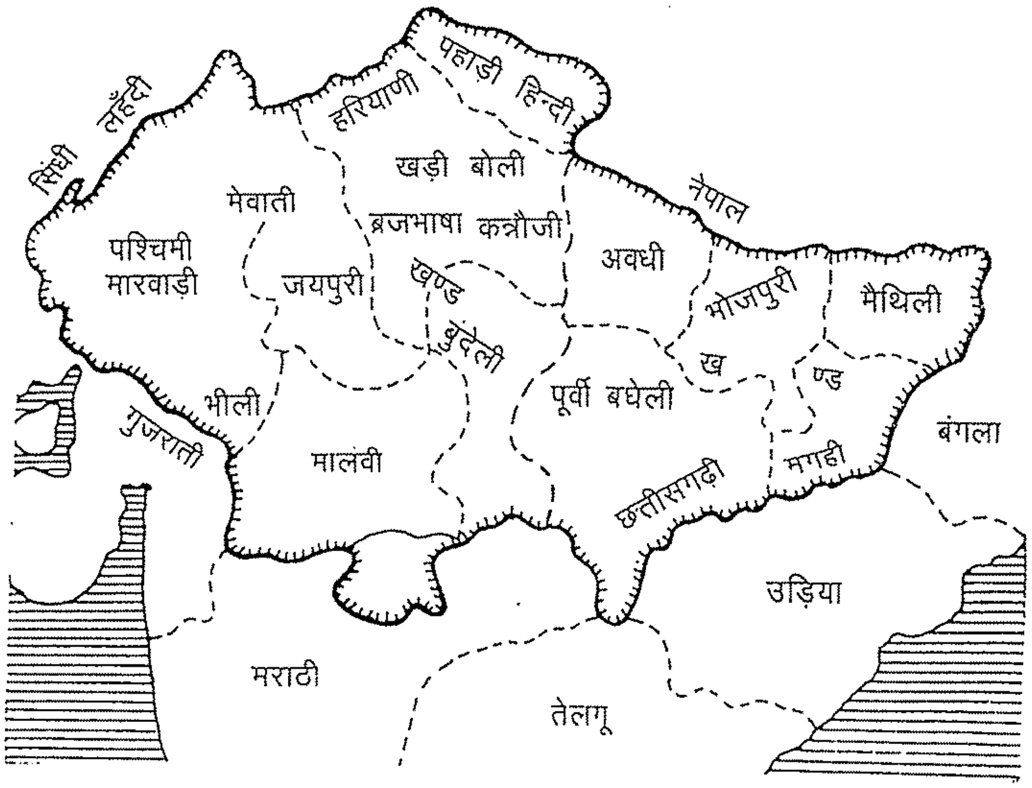

भोजपुरी – राजा भोज के वंशजो ने मल्ल जनपद में आकर नया राज्य स्थापित किया और अपनी राजधानी का नाम भोजपुर रखा। उसी नगर के नाम पर प्रदेश का नाम भी भोजपुर पड़ गया और उसकी बोली भोजपुरी कहलायी। इसके अंतर्गत उत्तरप्रेदश में बनारस, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़ के पूरे जिले और मिर्जापुर, जौनपुर तथा बस्ती के कुछ भाग एवं बिहार में शाहाबाद और सारन (छपरा) के पूरे जिले और चम्पारन, राँची तथा पलामू के कुछ भाग सम्मिलित हैं। इसे बोलने वालों की संख्या 2 करोड़ 75 लाख हैं।

मगही – मगही मागधी या मगध की भाषा का आधुनिक नाम है, इसके क्षेत्र में पटना, गया और हजारीबाग के पूरे जिले तथा पलामू का पश्चिमी भाग एवं मुंगेर और भागलपुर का थोड़ा–थोड़ा भाग सम्मिलित है। इसे बोलने वालों की संख्या लगभग 66 लाख है।

मैथिली – भोजपुरी क्षेत्र के पूर्व में तथा मगध के उत्तर में मिथिला हैं जिसकी बोली मैथिली हैं। विशुद्ध मैथिली, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्निया, उत्तरी मुंगेर और उत्तरी भागलपुर के जिलों में बोली जाती है। इस बोलने वालों की संख्या 1 करोड़ 13 लाख के लगभग है।

कौरवी – उत्तरी भारत की सामान्य बोलचाल की भाषा को खड़ी बोली कहते हैं जिसका एक साहित्यिक रूप भी है। अतः क्षेत्र विशेष की बोली के लिए इसे कौरवी कहते हैं। इसे बोलने वालों की संख्या लगभग 1 करोड़ है।

हरियाणी – अम्बाला से दक्षिण पश्चिम के भू–भाग को हरियाणा कहते हैं। इसके अंतर्गत दिल्ली प्रदेश, रोहतक, और करनाल के पूरे जिले जींद और नाभा, हिसार का पूर्वी भाग और पटियाला का दक्षिण पूर्वी प्रान्त सम्मिलित हैं। इसे बोलने वालों की संख्या 30–32 लाख के लगभग है।

दक्खिनी – चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में दिल्ली के सुल्तानों ने हरियाणा और कुरु प्रदेश के लोगों को दक्षिण में दौलताबाद और उसके आस–पास जा

बसाया। धीरे–धीरे दक्षिण में पाँच स्वतंत्र राज्य स्थापित हुए गुलबर्गा, बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर और बरार। इन की पीढ़ीयां रोजगार की तलाश में महाराष्ट्र और हैदराबाद के अलावा गुजरात और मद्रास में चली गई । वे अपनी भाषा को हिन्दी या हिन्दवी कहते आ रहे हैं। इसके बोलने वालों की संख्या 40 लाख के लगभग है।

ब्रजभाषा – शौरसेनी प्राकृत से उत्पन्न सभी बोलियों में ब्रजभाषा उसकी मुख्य उत्तराधिकारिणी है। शूरसेन का ही दूसरा नाम ब्रजमण्डल है। विशुद्ध ब्रजभाषा मथुरा, अलीगढ़, और आगरा जिलों में बोली जाती है। अनुमानतः ब्रजभाषा 1 करोड़ 30 लाख जनता की भाषा है।

बुंदेली – बुंदेला राजपूतों का प्रदेश होने के कारण इस क्षेत्र को बुंदेलखण्ड और इसकी भाषा को बुंदेलखण्डी या बुंदेली कहा जाता है। इसके अंर्तमत उत्तरप्रदेश में बांदा का पश्चिमी भाग उरई, हमीदपुर, जालौन और झांसी के पूरे–पूरे जिले एवं मध्यप्रदेश में ग्वालियर का पूर्वी भाग, भोपाल का थोड़ा सा हिस्सा, ओरछा, पन्ना, दतिया, सागर, टीकमगड़, नृसिंहपुर, सिउनी, छिंदवाड़ा, होशंगाबाद, और बालाघाट के जिले आते है। इसे बोलने वालों की संख्या अनुमानतः 62 लाख है।

कन्नौजी – कान्यकुब्ज या कन्नौज किसी समय में प्रदेश का नाम था। कन्नौज (फर्रुखाबाद) ही कन्नौजी का केन्द्र है। पूर्व में कानपुर, दक्षिण में जमुना नदी और उत्तर में गंगापार हरदोई, शाहजहांपुर तथा पीलीभीत तक इस बोली का क्षेत्र है। इसे बोलने वालों की संख्या 44–45 लाख के लगभग है।

मारवाड़ी – मरूभूमि, मरूदेश, मारूदेस, मुरधरदेस, मरवण और मारवाड़ एक ही प्रान्त के नाना नाम है। शुद्ध मारवाड़ी जोधपुर और उसके आसपास बोली जाती है। कुछ मिश्रित रूपों में यह पूर्व में अजमेर–मेरवाड़ा, किंशनगढ़ और मेवाड़ में, दक्षिण में सिरोही और पालनपुर तक, पश्चिम में जैसलमेर और सिंध के अमरकोट तक एवं उत्तर में बीकानेर जयपुर के उत्तरी भाग तथा पंजाब में

हिसारभिवानी के पूर्व तक बोली जाती है। इसके बोलने वालों की संख्या 72 लाख से कुछ अधिक है।

ढूंढ़ाड़ी या जयपुरी –जयपुर 17वीं शति में बसाया गया था। अतः जयपुरी नाम भी नया ही है। स्थानीय नाम तो है ढूंढ़ाडी, क्योंकि इस क्षेत्र को ढूँढ़ाड कहते है। विशुद्ध जयपुरी जयपुर नगर के 40 मील उत्तर 50 मील पूर्व और 60 मील दक्षिण तक बोली जाती हैं। ढूँढाडी बोलने वालों की संख्या 36 लाख के लगभग है।

मेवाती – मे जाति के नाम पर क्षेत्र का नाम मेवात और बोली का मेवाती पड़ा है। किन्तु बोली का क्षेत्र बड़ा हैं। शुद्ध मेवाती अलवर, भरतपुर के उत्तर–पश्चिम और गुड़गाँव (पंजाब) के दक्षिण–पूर्व में बोली जाती है।

मालवी – उज्जैन के आसपास का क्षेत्र मालव नाम से कई शताब्दियों से प्रसिद्ध रहा है। मालव या मालवा की बोली का नाम मालवी है। इसके अंर्तगत पश्चिम में परताबगढ़, रतलाम, दक्षिण–पश्चिम में इंदौर, दक्षिण में भूपाल और होशंगाबाद का पश्चिमी भाग तथा बैतूल का उत्तरी भाग, उत्तरपूर्व में गुना और उत्तरपश्चिम में नीमच उत्तर में ग्वालियर, झालावाड़ टोंक तथा चित्तौड़गढ़ के कुछ भाग सम्मिलित है। इसे बोलने वालों की संख्या 55 लाख से कुछ ऊपर है।

कुमाऊनी – कुमाऊँ का पुराना नाम कूर्माञ्चल था। इसके अंतर्गत नैनीताल, अलमोड़ा और पिथौरागढ़ के जिले सम्मिलित है। मूल बोली खस थी जिसपर राजस्थानी और खड़ीबोली का प्रभाव बढ़ता ही रहा है। जनसंख्या 6 लाख के लगभग है।

गढ़वाली – कूर्माञ्चल की पश्चिमी सीमा से जमुना तक का प्रदेश केदारखण्ड के नाम से विख्यात था। 15वीं शाती में पवार राजपूतों ने और बाद में बंगाल के पाल राजाओं ने यहाँ पर राज्य किया। ठाकुरों की बावन गढ़ियों में विभक्त हो जाने के कारण इसका नाम गढ़वाल या बावनी पड़ा। इसके अंतर्गत गढ़वाल,

टिहरी और चमोली के जिले और उत्तरकाशी का दक्षिणी भाग सम्मिलित हैं। गढ़वाली बोलने वालों की संख्या 6 लाख से कुछ अधिक है।

बोलियों के अध्ययन के लिए हिन्दी प्रदेश के दो खण्ड हैं– पश्चिमी और पूर्वी। इसमें प्रथम वर्ग की भाषाओं में बहुत सी समानताएँ पायी जाती हैं। दूसरे वर्ग की भाषाओं में क्रिया की विभक्तियाँ तो सामान्य है, किन्तु शेष व्याकरणिक कोटियाँ भिन्न–भिन्न हैं। हिन्दी बोलियों में परसर्गों की विविधता और भविष्यत् काल की अनेकरूपता ध्यान देने योग्य हैं।

1.1.6 प्रामाणिक भाषा[1] – वैदिक की अपेक्षा संस्कृत का शब्दभण्डार अधिक सम्पन्न हैं। इसका कारण यह है कि संस्कृत को वैदिक की सम्पत्ति भी दाय में प्राप्त हुई और उसने देशी–विदेशी स्त्रोतों से शब्दों को ग्रहण भी किया और उपसर्ग–प्रत्यय आदि साधनों से पुरानी धातुओं से नये–नये शब्द भी गढ़े । यह ठीक है कि वैदिक काल की इतनी ही शब्द सम्पत्ति न रही होगी, जितनी हमें ग्रंथों के द्वारा प्राप्त हुई है किन्तु संस्कृत काल के भाषा भाषियों को तो वह सम्पत्ति लगभग पूरी–पूरी मिली होगी और फिर संस्कृत के पक्ष में भी तो ऐसा ही कहा जा सकता है कि उसकी शब्द –सम्पत्ति प्राप्य मात्रा से कई गुना अधिक रही होगी। इसी तरह प्राकृत काल का शब्द भंडार इतना ही नहीं था, जितना प्राकृत साहित्य से संकलित किया गया, किन्तु अपभ्रंश ने और हिन्दी की नाना बोलियों ने तत्कालीन प्रचलित शब्दावली का बहुत बड़ा अंश रिक्थ के रूप में पाया इसमें सन्देह नहीं हैं। जो क्षति प्रयोग के ह्रास या शब्द लोप से भाषा की हुई उससे अधिक पूर्ति प्राचीन शब्दों का पुनरूद्धार करके नये–नये शब्दों का निर्माण करके, देश– विदेश की विविध भाषाओं से उद्धार ले कर, की गयी हैं– यह अलग बात है कि हिन्दी के उन सारे शब्द–भण्डार का संकलन नहीं हुआ और न ही आंकलन–विकलन का तुलनात्मक अध्ययन ही किया गया हैं जिससे हम यह जान सकते कि वैदिक काल के बाद समय–समय पर कितनी क्षति हुई और कितनी अभिवृद्धि हुई, किन्तु

---

1. बाहरी एच.डी. (1980) हिन्दी उद्‌भव विकास और रूप इलाहबाद, किताब महल

ज्ञात सामग्री के आधार पर साहित्य और ज्ञान–विज्ञान तथा साधारण व्यवहार का माध्यन होने के नाते आज की हिन्दी पूर्ववर्ती आर्यभाषाओं से कई गुना समृद्ध है। इसने संस्कृत के तत्सम शब्दों का 60–70% भण्डार अपना लिया है। (विशेषतः साहित्यिक और शिक्षित वर्ग की भाषा ने) और नवनिर्माण द्वारा शेष 30–40% शब्दों की क्षतिपूर्ति कर ली है।

1.1.7 हिन्दी उद्भव विकास और रूप[1]

विकास क्रम की दृष्टि से भारतीय आर्यभाषा को तीन कालों में विभाजित किया गया है।

1. प्राचीन (वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत) 2400 ई. पूर्व से 500 ई. पूर्व तक।
2. मध्यकालीन (पालि–प्राकृत) 500 ई. पूर्व से लेकर 1100 ई. तक।
3. आधुनिक (हिन्दी और हिन्दीतर बँगला, गुजराती, मराठी, सिंधी, पंजाबी, आदि।)

हिन्दी का इतिहास वस्तुतः वैदिक काल से आरंभ होता है। उससे पहले इस आर्यभाषा का स्वरूप क्या था, यह सब कल्पना का विषय बन गया है। कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। आर्य चाहे कहीं बाहर से आये हों, अथवा यहीं सप्तसिंधु प्रदेश के मूल निवासी हों, यह निश्चित और निर्विवाद सत्य है कि वर्तमान हिन्दी प्रदेश में आने से पहले उनकी भाषा वही थी जिसका साहित्य रूप ऋग्वेद में प्राप्त होता हैं। एक तरह से यह कहना ठीक होगा कि वैदिक भाषा ही प्राचीनतम हिन्दी है। इस भाषा के इतिहास का यह दुर्भाग्य है कि युग–युग में इसका नाम परिवर्तित होता रहा है, कभी वैदिक कभी संस्कृत कभी प्राकृत कभी अपभ्रंश और अब हिन्दी । तमिल, रूसी, चीनी, जर्मन, सभी परिवर्तित हो गयी है। लोगों ने उनके प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक रूपभेद तो बताये, किन्तु उनका नाम नहीं बदला। भारत में प्रत्येक युग की भाषा का नया नाम रखा जाता रहा है।

---

1. बाहरी एच.डी. (1980) हिन्दी उद्भव विकास और रूप इलाहबाद, किताब महल

एक प्रश्न यह उठाया जा सकता हैं कि हिन्दी तो प्रादेशिक बोली मात्र है –एक समय में ब्रजभाषा थी आजकल खड़ीबोली है– और वैदिक, संस्कृत, पालि या प्राकृत साहित्यिक भाषाएँ है। तब बोली के क्रमिक विकास को समझने के लिए साहित्यिक भाषाओं के अध्ययन की क्या आवश्यकता हैं ? साहित्यिक भाषा तो देववाणी बनकर सुशिक्षित वर्ग में सीमित हो जाया करती हैं। जन–जन से उसका संपर्क नहीं रह जाता । तब बोली के विकास में उसका योग ही क्या हो सकता हैं ? इसमें कोई संदेह नहीं कि आर्य कई जातियों और "जनों" में बँटे हुए थे और प्रत्येक जनपद की अपनी बोली थी। गंधार से लेकर कोसी तक के विशाल आर्यावर्त में एक ही बोली नहीं हो सकती थी। इसके प्रमाण वेद, बौद्ध, त्रिपिटक, अशोक की धर्म लिपियों, संस्कृत नाटकों की प्राकृतों, प्रादेशिक प्राकृतों और अपभ्रशों से मिल जाते है किन्तु साहित्यिक भाषा भी तो कोई–न–कोई बोली ही होती हैं। और जब वह बोली सामान्य एवं साहित्यिक भाषा की पदवीं को प्राप्त होती है तो उसे आसपास की अनेक बोलियों से समझौता करना पड़ता हैं, उनके शब्द–रूप और ध्वनिग्राम तक अपनाने पड़ते हैं। भारत में किसी युग की भाषा की प्रतिमा की मिट्‌टी भले ही लोक से ली जाती रही हो, किन्तु उसकी प्राण–प्रतिष्ठा पूर्वकालीन आर्यों की साहित्यिक भाषा से होती रही है, बल्कि लोकभाषा भी उसकी साहित्यिक भाषा से अनुप्राणित होती आयी हैं। हमारा तात्पर्य यह है कि साहित्यिक भाषा बोलियों के योग से विकसित होती है और विकासमान होकर बोलियों को प्रभावित भी करती है। अतः हिन्दी के लिए संस्कृत आदि का महत्व मूलभूत बोली या जनभाषा के रूप में भी हैं और साहित्यिक भाषा या देवभाषा के रूप में भी। युग–युग की बोलियों का हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। कोई लिखित रूप ही नहीं है, इसलिए हमें तत्कालीन साहित्यिक भाषाओं को ही अपना आधार बनाकर आधुनिक आर्यभाषाओं के इतिहास को समझना है।

1.1.8 अनार्य जातियों का योगदान[1]

ऐसा नहीं है कि हिन्दी अथवा प्राकृतों में जो कुछ हैं, वह आर्यों ही की भाषाओं से चला आ रहा है, अथवा आर्यों की सारी सम्पत्ति प्राकृतों और हिन्दी को प्राप्त हो गयी हैं। युग–युग की भाषा में यहाँ तक कि वैदिक और संस्कृत में भी, बहुत सा अनार्य तत्व सम्मिलित हैं। आर्यों के आने से पहले इस देश में अथवा यदि आर्य सप्तसिन्धु देश के निवासी थे तो भी भारत के अन्य प्रदेशों में अनेक अनार्य जातियाँ रहती थी जिसमें चार का प्रसार बहुत व्यापक था अर्थात् निग्रोटु, किरात, ऑस्ट्रिक (आग्नेय) या निषाद और द्रविड़ ।

द्रविड़ कुल की जातियाँ सांस्कृतिक दृष्टि से सबसे अधिक उन्नत रही हैं। उत्तरी भारत को विजित कर लेने के बाद आर्यों ने द्रविड़ों से लोहा लिया और इन जातियों को उत्तर–पश्चिमी भारत से बाहर ढकेल दिया । दक्षिण में आज भी इनकी संस्कृति और भाषा का अस्तित्व बना हैं। मद्रास, केरल, मैसूर और आन्ध्र में क्रमशः तमिल, मलयालम, कन्नड़ और तेलगू बड़ी–बड़ी और साहित्यिक भाषाएँ हैं जिनके बोलने वालों की संख्या आठ करोड़ से अधिक है। इन सबका अपना–अपना साहित्य है।

इन जातियों के अतिरिक्त न जाने कितनी और छोटी–बड़ी जनजातियाँ थी जो या तो मूलतः नष्ट हो गयी, या आर्यो अथवा दूसरी बड़ी अनार्य जातियों के घेरे में पड़कर विलीन हो गयी। भला उनकी भाषाओं के तत्व कभी काल के मुख से बाहर लाये जा सकेगें । कालांतर में हूण, मंगोल, चीनी, तुर्क, अरब, शान (वर्मा से) आदि अनेक जातियाँ यहाँ आयी और घुलमिल गयी इन सब ने भारतीय भाषाओं के निर्माण में अपना –अपना योग दिया था।

1.1.9 प्राचीन आर्यभाषा[2]

ऋग्वेद पंजाब के साहित्यकारों की कृतियों का संग्रह हैं। दसवें मण्डल में कुछ बाद की भाषा है। तब तक आर्य कुरू–पांचाल प्रदेश की

1, 2. बाहरी एच.डी. (1980) हिन्दी उद्भव विकास और रूप इलाहबाद, किताब महल

ओर बढ़ गये थे और मध्य प्रदेश की अनार्य जातियों का प्रभाब पड़ने लग गया था। सामवेद और यजुर्वेद की भाषा में बढ़ते हुए अनार्य तत्व का समीक्षण किया जा सकता है। तैत्तिरीय और मंत्रायणी संहिताओं को पढ़कर कौन कहेगा कि दोनों भाषा समकालीन हैं ? अर्थववेद की संस्कृति और भाषा में यह तत्व और भी अधिक मात्रा में पाया जाता है। ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों की भाषा पूरे तौर पर तत्कालीन मध्यप्रदेश की आर्यभाषा का प्रतिनिधित्व करती है। ऋग्वेदोत्तर साहित्य से वैदिक भाषा की दूसरी स्थिति का परिचय मिलता है। इसका काल देश भाषाशास्त्रीय साक्ष्य के आधार पर 1000 और 800ई. पूर्व का उत्तर–पश्चिमी मध्यदेश निश्चित किया जा सकता है।

पाणिनि काल तक वैदिक साहित्यिक भाषा थी, किन्तु जैसा कि ब्राह्मणों और उपनिषदों की भाषा से विदित होता है, वेदभाषा, देवभाषा हो गयी थी और कुरू पाँचाल की जन भाषा साहित्यिक स्तर की ओर उठ रही थी। आरम्भ में इसका रूप अस्थिर था, इसमें अनेक जनपदीय प्रयोग चल रहे थे और एक प्रकार की ऐसी ही अराजकता फैली थी, जैसी आज हिन्दी में व्याप्त है। पाणिनि ने विषमता में एकता और विविधता में समरूपता लाकर उस भाषा को स्थिर और संस्कृत किया। पाणिनि ने वैदिक को देववाणी और इसको "भाषा" कहा हैं। इससे स्पष्ट होता हैं कि उस काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी, किन्तु भाषा तो बहता नीर है, स्थिरीकृत होकर वह कूपजल हो गयी और यह कूपजल धीरे–धीरे निर्मल, स्वादु और गहरा होता गया। इसके परम विकास की अवस्था तब जान पड़ी जब यह बोलचाल की भाषा नहीं रह गयी । बौद्ध साहित्य और अशोक के शिलालेखो से प्रमाणित है कि तब तक कई बोलियाँ सिर उठा रही थीं। विद्वानों ने संस्कृत काल 5वीं शाती ई. पूर्व तक माना है किन्तु संस्कृत की वास्ततिक उन्नति मोर्य काल के अन्त से प्रारंभ करके 9वीं व 10 वीं शाती तक बराबर होती रही है। तब वह संस्कृत शिक्षा और शासन का माध्यम बनी । जितना उपयोगी, धार्मिक, दार्शनिक, लौकिक एवं ललित साहित्य

संस्कृत में तब लिखा गया उतना कई शताब्दियों आगे पीछे संसार की किसी भाषा में नहीं लिखा गया । संस्कृत सारे देश की समन्वय शक्ति बनकर उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सर्वत्र छा गयी ।

"संसार की भाषाओं में कोई भी भाषा इतनी पूर्व और उन्नत नहीं है जितनी कि संस्कृत भाषा।"

—जर्मन विद्वान श्लेगल।

अतः पालि प्राकृत और आधुनिक भाषाओं को विशेषतः ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में संस्कृत का बार—बार आश्रय लेना पड़ा है।

1.1.10 मध्यकालीन आर्यभाषा[1]

भगवान बुद्ध और महावीर जैन ने ब्राह्मण संस्कृति और सत्ता के विरूद्ध विद्रोह खड़ा किया और यह विद्रोही भावना भाषा के क्षेत्र में भी व्यक्त हुई। उन्होनें जनभाषा या प्राकृत के माध्यम से अपने—अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। तब से (5वीं शती ई.पू. से) आर्यभाषा का मध्यकाल शुरू होता है और 10वीं 11वीं शती ईस्वी तक चलता है। इस काल की प्राकृतों की तीन स्थितियाँ मानी गयी है—

1. 500 ई. से प्रथम शती तक – पालि
2. प्रथम शती से छठी शती तक – साहित्यिक प्राकृतें
3. छठी शती से 11वीं शती तक – अपभ्रंशे ।

1.1.10.1 पालि – पालि शब्द की व्युत्पत्ति 'पंक्ति' (बुद्धवचन की पंक्तियाँ) अथवा 'पल्लि' (ग्राम ग्रामीण भाषा होने के नाते) अथवा 'पाटलि' (पुत्र) (मगध की भाषा होने के कारण) अथवा पर्याय या परियाय (प्रवचन) अथवा प्राकृत, पाइल से सिद्ध की जाती है। 'अभिधानप्पदीपिका' के आधार पर 'पा' धातु में 'लि' प्रत्यय जोड़कर पालि बनता है। अर्थात् पालयति रक्षतीति तस्मात् पालि— यह बुद्धवचन के अर्थो (तत्वों) की रक्षा करती है। पाठ के अर्थ में इसका प्रयोग प्राचीन बौद्ध साहित्य में

---

1. बाहरी एच.डी. (1980) हिन्दी उद्‌भव विकास और रूप इलाहबाद, किताब महल

मिलता है, किन्तु इस भाषा के संदर्भ में सर्वप्रथम आचार्य बुद्धघोष (5वीं शती) ने "पालि" शब्द का प्रयोग किया था। मगध सम्राट अशोक के पुत्र महाराजकुमार महेन्द्र ने पालि साहित्य ले जाकर सिंहल में थेरवाद का प्रचार किया था, अतः वहाँ के बौद्धों की यह धारणा है कि पालि मगध की भाषा है किन्तु विद्वानों ने मथुरा और उज्जैन के बीच के प्रदेश को इसका क्षेत्र माना है। जिन जनभाषाओं में उस साहित्य का अनुवाद हुआ था, उनमें पालि इसलिए सुरक्षित रह सकी कि महाराजकुमार महेन्द्र 'त्रिपिटक' को ले जाकर लंका में छोड़ आये थे। भारत की आर्य जनभाषाओं का इतिहास लिखा जाये तो उसमें पालि का महत्वपूर्ण स्थान रहेगा। देश के बाहर भी यदि संस्कृत के अतिरिक्त किसी भारतीय भाषा का प्रभाव पड़ा है तो वह पालि है । सारा बौद्ध जगत् वर्मा, लंका तिब्बत, चीन–पालि भाषा और साहित्य से अनुप्राणित रहा है ।

पालि भाषा के अध्ययन के प्रमुख आधार है – त्रिपिटक (बुद्धबचन) टीका (अट्ठकथा) साहित्य, बंस (ऐतिहासिक) साहित्य/पालि साहित्य बुद्ध के समय से लेकर 11वीं शती तक बराबर लिखा जाता रहा है।

1.1.10.2 अशोक कालीन पालि –

ब्राह्मणों की देववाणी और 'विद्रोहियों' की जनवाणी में शताब्दियों तक संघर्ष चलता रहा कभी संस्कृत का और कभी प्राकृत का पक्ष सबल होकर देश में व्याप्त रहा। उत्तर–पश्चिमी भारत में संस्कृत को संस्कृति, साहित्य, और राजनीति के अनेक केन्द्रों में प्रतिष्ठित किया गया और मध्यदेश की इस भाषा का दबदबा सारे भारत में ही नहीं, बल्कि बाहरी देशों में भी माना जाता था, किन्तु जनभाषा तो अमर हुआ करती हैं। पूर्व में जनभाषा को उठाने का जो पराक्रम भगवान् बुद्ध और महावीर जैन ने किया, वह जारी रहा। पाटलिपुत्र एक बहुत बड़े राज्य की राजधानी बना और चन्द्रगुप्त मौर्य ने पश्चिमी सत्ताओं को दबा कर मगध की सत्ता को प्रसारित किया। चन्द्रगुप्त की विजयों के बाद उनके पौत्र सम्राट अशोक में देश में निर्माण का कार्य किया। जिस भाषानीति

को धर्म सफलतापूर्वक अग्रसर नहीं कर सका, उसे अशोक ने राजसत्ता द्वारा आगे बढ़ाया उसने धर्म और शासन संबंधी अपने आदेश साम्राज्य के विभिन्न भागों में पहुँचाने के लिए शिलाओं, स्तंभों और भित्तियों पर खुदवाये । ये अभिलेख कलिंग(आधुनिक उड़ीसा) नेपाल की तराई जिला चम्पारन (बिहार), सहसराम (बिहार) आन्ध्र, सारनाथ, साँची (भोपाल), जबलपुर, जयपुर, रावलपिंडी, पेशावर, आदि स्थानों के निकट पाये गये है। यद्यपि इनसें तत्कालीन तीन आर्य बोलियों का परिचय मिलता है–उत्तर–पश्चिमी, मध्यदेशीय और प्राच्य, किन्तु वास्तव में सर्वत्र पाटलिपुत्र की राजभाषा का रूप छाया हुआ हैं। मौर्यकाल के अंत तक पूर्वी भाषा का दबदबा रहा है। फिर भी उसे उतनी व्यापकता अथवा मान्यता कभी प्राप्त नहीं हुई, जितनी मध्यदेशीय आर्यभाषाओं को।

1.1.10.3 प्राकृत –

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के विकास की दूसरी स्थिति में जो जनभाषाएँ साहित्य में प्रतिष्ठित हुई, उन्हें "प्राकृत" कहते हैं। किन्तु यह शब्द स्पष्टार्थ नहीं है। "प्राकृत" के दो अर्थ है– एक तो जनभाषा (प्राकृत जनानां भाषा प्राकृतम्) और दूसरा प्रकृति या मूल से उत्पन्न, अर्थात् संस्कृत की पुत्री ।

इस प्राकृत का नाम वास्तव में साहित्यिक प्राकृत अथवा मध्यकालीन प्राकृत होना चाहिए। साहित्य का माध्यम बनने के उपरांत इस भाषा को भी अधिकाधिक संस्कृत शब्दावली अपनानी पड़ी, बल्कि एक सामान्य और अखिल भारतीय मान्यता प्राप्त करने के लिए इसने संस्कृत का अनुकरण किया। इस दृष्टि से ठीक ही कहा गया है कि संस्कृत प्राकृत की जननी है। दूसरा अर्थ इस संदर्भ में उचित हैं। साहित्यिक प्राकृत संस्कृत की पुत्री ही नहीं, परिचारिका बनकर चली है।

प्राकृतों के भेद –भरतमुनि ने "नाट्यशास्त्र" में सात प्राकृतों का उल्लेख किया है– शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी, दक्षिणात्या, बाव्हीकी, आवन्ती, तथा प्राच्या। प्राकृत वैयाकरण चण्ड ने 'प्राकृत–लक्षण' में महाराष्ट्री के अतिरिक्त गौण रूप से शौरसेनी, पैशाची और अपभ्रंश का वर्णन किया है।

पैशाची –ये पिशाचों की भाषा थी। पिशाच पश्चिमोत्तर प्रदेश के उन अनार्यों को कहा जाता था जिन्होंने आर्य संस्कृत को पूरी तरह नहीं अपनाया था। इसके अवशेष चीनी तुर्किस्तान, काफिरस्तान, गांधार आदि में पाये गये शिलालेखों में मिल सकते हैं। पंजाब, सिंध, बलोचिस्तान और कश्मीर की भाषाओं में पैशाची का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। गुणाढ़यकृत "बृहत्कथा" के कारण इसकी विशेष ख्याति है, परंतु मूल कृति काल–कवलित हो गयी है।

शौरसेनी –मथुरा और उसके आसपास के प्रदेश (शूरसेन)की भाषा थी और इस तरह यह पश्चिमी हिन्दी बोलियों की जननी कहीं जा सकती है। एक समय में यह उत्तरी भारत की राष्ट्रभाषा थी। दिगम्बर जैन मत का सिद्धान्त साहित्य इसी में है। संस्कृत नाटकों में यह गद्य की भाषा है। शौरसेनी संस्कृत के अधिक निकट है। अन्य प्राकृतों की अपेक्षा इसमें तत्सम और अर्धतत्सम शब्दों का प्राचुर्य है।

मागधी – मगध और उसके पूर्वीय प्रदेश की भाषा थी। बिहारी हिन्दी की बोलियों के विकास में इसका योग रहा है, किन्तु साहित्यिक स्तर शौरसेनी के निकट है।

अर्धमागधी – अवध और काशी जनपदों की तत्कालीन भाषा थी और माहवीर जैन की वाणी का माध्यम मानी जाती है। इसका झुकाव शौरसेनी की ओर अधिक है, मागधी की ओर कम । गद्य में मागधी और पद्य में शौरसेनी का प्रभाव देखा जाता है।

महाराष्ट्री – महाराष्ट्र की प्राकृत बतायी जाती है– महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदु (दण्डी)। वैयाकरणों ने इसी को प्रमुख और आदर्श मानकर प्राकृत के सामान्य लक्षण निर्धारित किये है। डॉ. मनमोहन का मत है कि महाराष्ट्री शौरसेनी की ही उत्तरकालीन शाखा हैं। हार्नले का मत है कि 'महाराष्ट्र' का अर्थ है कि 'महानराष्ट्र' और 'राष्ट्र' का अर्थ है जनपद । महाराष्ट्री जनपदीय या प्रादेशिक बोली न होकर सारे उत्तरी भारत (एक बड़े राष्ट्र) की भाषा थी। बाद

में तो महाराष्ट्री और प्राकृत पर्याय हो गये थे। 80: प्राकृत साहित्य महाराष्ट्री में लिखा गया है।

1.1.11 अपभ्रंश[1]

संस्कृत वैयाकरणों ने संस्कृत से भिन्न समस्त भाषाओं को अपभ्रष्ट कहा है, किन्तु भारतीय भाषाओं के इतिहास में अपभ्रंश का रूढ़ार्थ 'आभीरों' आदि की भाषा माना गया है। काव्यादर्श में आचार्य दण्डी लिखते है कि काव्य में आभीरों आदि की भाषा अपभ्रंश कहलाती है। आरम्भ में जब आभीर भारतीय संस्कृति में दीक्षित नहीं हुए थे, तो उन्हें और उनकी भाषा को अपभ्रष्ट कहा जाता था।उनके राजस्थान, सिन्ध और गुजरात में फैल जाने पर अभीरों और शौरसेनी प्राकृत के मेल से अपभ्रंश ग्रामीण भाषा के रूप में विकसित होने लगी। राजस्थान और गुजरात का इतिहास साक्षी है कि गुर्जरों और आभीरों के अतिरिक्त कई जातियाँ बाहर से आकर पश्चिमी भारत में बस गयी थी और धीरे–धीरे राजसत्ता पाने पर अपने को 'राजपुत्र' कहलाने लगी। वस्तुतः इन्हीं की भाषा को अपभ्रंश कहा गया है।

1.1.12 अवहट्ट[2]

कुछ विद्वानों ने उत्तरकालीन अपभ्रंश को 'अवहट्ट' नाम से स्वीकार किया है । पहले यह धारणा रही है कि पूर्वी अपभ्रंश का नाम अवहट्ट हैं । कीर्तिलता की भाषा को विद्यापति ने अवहट्ट कहा है । अनुशीलन से पता चलता है कि संनेह रासय (संदेश रासक) के कवि अद्दहमाण (अब्दुर रहमान) ने अवहट्ट भाषा के कवियों को नमस्कार किया है। उन्हीं की पंरम्परा में वे भी आते हैं। उक्ति व्यक्ति–प्रकरणम में दामोदर पंडित ने कोसल की भाषा को 'अपभ्रष्ट' कहा है । इससे लगता है कि पूरब में ही नहीं, पश्चिमी और मध्यदेशीय प्रदेश में भी लोक भाषी को अवहट्ट कहा जाता था। इस प्रकार अपभ्रंश के उत्तर काल में और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के उदयकाल से

1, 2. बाहरी एच.डी. (1980) हिन्दी उद्भव विकास और रूप इलाहबाद, किताब महल

पहले की अर्थात् उस संधिकाल या संक्रांतिकाल की भाषा अवहट्ट थी। अवहट्ट काल सन् 900 ये 1100 ई. या थोड़े बाद तक निश्चित किया गया है।

1.1.13 आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ[1]–

जिस प्रकार हिन्दी प्रदेश में प्राकृतों के भेद–उपभेद हुए उसी प्रकार अन्य प्रदेशों की प्राकृतें क्रमशः टूटती रहीं । इससे भारतीय आर्यभाषाओं के आधुनिक काल का प्रारंभ होता है। मध्यकाल की प्राकृतें और अपभ्रंश, अवहट्ट आदि साहित्यिक भाषाएँ वन गयी अथवा जहाँ पर कोई स्थानीय साहित्यिक भाषा नहीं भी वहाँ थी क्रमशः जनता की भाषाओं को उठने के अवसर मिल रहे थे।

भारतीय आर्यभाषा का प्राचीन रूप ऋग्वेद में सुरक्षित है वैदिक संस्कृत विशुद्ध आर्यभाषा थी ऐसा नहीं कहा जा सकता क्यों कि उसमें अनार्य भाषाओं द्रविड़ संथाली, मुण्डा आदि भाषाओं का बढ़ता हुआ प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। लौकिक संस्कृत ने उच्चारण और व्याकरण में एकरूपता लाने की चेष्टा तो की, किन्तु भाषा बहता नीर है और उसमें परिवर्तन आना अनिवार्य है। मध्यकालीन आर्यभाषा की तीन स्थितियाँ बतायी जाती है– पालि, साहित्यिक प्राकृतें (शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी आदि) और अपभ्रंशे, किन्तु वास्तव में अपभ्रंश एक पश्चिमी प्राकृत ही थी। इन स्थितियों के बीच की कड़ियाँ या संक्रमण– स्थितियाँ भी अवश्य रही हैं, किन्तु प्रत्येक स्थिति को नयी भाषा मान लेना उचित नहीं है।

भिन्न–भिन्न कालों की भाषाओं का विकास सीधे साहित्यिक भाषाओं से नहीं होता रहा, बल्कि जब कभी कोई जनभाषा या बोली शिक्षा, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठापित हुई, उसने उच्चाभिव्यक्ति के लिए संस्कृत का आश्रय अवश्य लिया । न तो प्राकृतों का विकास सीधे संस्कृत से हुआ और न ही आधुनिक भाषाओं का सीधे साहित्यिक प्राकृतों से ।

---

1. बाहरी एच.डी. (1980) हिन्दी उद्भव विकास और रूप इलाहबाद, किताब महल

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ

पूर्वमध्यकालीन प्राकृत भाषा	उत्तरमध्यकालीन प्राकृत भाषा	निर्माण–काल में प्रभावकारी भाषा	आधुनिक आर्यभाषा
कैकेय	कैकेय	व्राचड, पैशाची, टक्क	लहँदी
टक्क	टक्क	कैकेय, शौरसेनी	पंजाबी
(अज्ञात)	व्राचड अपभ्रंश	कैकेय, पैशची	सिंधी
लाटी	नागर अपभ्रंश (गुर्जरी)	शौरसेनी	गुजराती
शौरसेनी	उपनागर अपभ्रंश (आभीरी)	गुर्जरी	राजस्थानी हिन्दी
शौरसेनी	शौरसेनी	आभीरी, टक्क, पैशाची आधे भाग पर टक्क और पैशाची	पश्चिमी हिन्दी
अर्धमागधी	अर्धमागधी	शौरसेनी	पूर्वी हिन्दी
मागधी	अवहट्ट	शौरसेनी	बिहारी हिन्दी
मागधी – उत्तरी	गौड़ी	ढक्की	बँगला
– दक्षिणी	(अज्ञात)	गौड़ी	असमिया
– (उत्कली)	ओड्र	गौड़ी	उड़िया
महाराष्ट्री	(अज्ञात)	वैदर्भी,गुर्जरी	मराठी
दरद	खस	आभीरी, राजस्थानी शौरसेनी	पहाड़ी (नेपाली आदि)

1.1.14 सामान्य भाषा[1] –

हिन्दी के दो रूप है एक क्षेत्रीय बोलियाँ और दूसरा उनका व्यापक रूप जिसे सामान्य हिन्दी कहते हैं। यदि प्रत्येक क्षेत्र में अपनी ही भाषा प्रचलित रहे और सामान्य भाषा का आदर न हो तो न केवल सामाजिक व्यवहार और सांस्कृतिक स्तर हीन हो जायेंगे बल्कि भाषा वैज्ञानिक उलझने पैदा हो जायेगी। शिक्षा के प्रसार, यातायात की सुविधा, बड़े–बड़े नगरों के विकास, साहित्य की वृद्धि, रेडियों और सिनेमा के प्रभाव, सैनिक भरती, सरकारी नौकरों के स्थानांतरण एवं सांस्कृतिक चेतना के कारण क्षेत्रीय बोलियों का स्थान सामान्य भाषा ले लेती हैं। हिन्दी किसी की बोली नहीं है, किसी की मातृभाषा नहीं हैं । हिन्दी एक सामान्य भाषा है। इसका ढ़ाँचा सभी बोलियों के तत्वों से बना है– भले ही इसकी आत्मा के युग–युग में बदल जाने के कारण इसके कई रूप रहे हैं। आज जो इसका रूप हैं, वह पिछले युग में नहीं था, न ही अगले युग में रह पायेगा। और सच तो यह है कि इसका रूप बदल ही रहा हैं– भले ही हम देख नहीं पा रहें । हमें इस रूप का मोह भी नहीं है। हिन्दी जितनी अधिक जनता की भाषा बनेगी, उतने अधिक तत्वों को संजोकर अपने रूप और कलेवर का विकास करेगी। इसीलिए न तो नाना बोलियों को और न ही विविध भाषाओं को इससे किसी तरह का खतरा हैं। यह तो उनके जीवन से जीवन पा रही हैं।

जिस देश में अनेक बोलियाँ और भाषाएँ हों, वहाँ एक सामान्य भाषा सबको जोड़ने का काम करती हैं। हिन्दी बनी–बनायी संसर्ग–भाषा हैं, भारतीय संघ की संपर्क–भाषा है। राष्ट्रीय भाषाएँ अनेक हैं सर्व–सुलभ भाषा हिन्दी ही हैं।

सामान्य भाषा का विकास जनता की राष्ट्रीय भावना के विकास का प्रतीक हैं। हिन्दी ने राष्ट्र को संगठित करने में जो काम किया हैं, वह हमारे इतिहास में प्रमाणित हो चुका है। यदि इतनी सामान्यता हिन्दी को प्राप्त न होती तो भारत में राष्ट्रचेतना का विकास न हो पाता। इस युग में बड़ी–बड़ी भाषाएँ

---

1. बाहरी एच.डी. (1980) हिन्दी उद्भव विकास और रूप इलाहबाद, किताब महल

पनपी हैं। छोटे–छोटे राज्यों के समान, छोटी–छोटी भाषाएँ दूसरी इकाइयों में विलीन हो रही हैं।

1.1.15 हिन्दुस्तानी[1] –

भारत के लिए 'हिन्द' और 'हिन्दुस्तानी' दोनों नाम मुसलमानी राज्य–काल से चले आ रहे हैं। यहाँ की भाषा के लिए 'हिन्दी, 'हिन्दुई' या 'हिन्दवी' के अतिरिक्त 'हिन्दुस्तानी' नाम भी यदा–कदा प्रयुक्त होता रहा है। सन् 1800 ई. के आस–पास फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रिंसिपल जान गिलक्रिस्ट ने 'हिन्दुस्तानी' को ग्रामीण हिन्दी और उर्दू, इन दो अर्थो में ग्रहण किया ।

1935 ई. में महात्मा गाँधी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए हिन्दी को देश की राष्ट्रीय भाषा–देश के नाना वर्गो और समुदायों को जोड़ने वाली एकता की भाषा घोषित किया। इस पर उर्दू के पोषकों में बड़ा शोर मचा। परिणाम यह हुआ कि गाँधी जी को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा उन्होनें इस भाषानीति की व्याख्या कुछ इस प्रकार से की –

1. हमारी सामान्य भाषा का नाम 'हिन्दुस्तानी होना चाहिए, हिन्दी नहीं ।
2. हिन्दुस्तानी का संबंध हिन्दुओं या मुसलमानों की धार्मिक परंपराओं से नहीं होगा।
3. इसमें प्रचलित शब्दों का ग्रहण होगा, देशी और विदेशी शब्दों का भेद नहीं किया जायगा।
4. हिन्दुओं को फारसी लिपि में लिखि जाने वाली उर्दू लिपि का और मुसलमानों को नागरी लिपि का ज्ञान होना चाहिए।
5. देवनागरी और उर्दू, दोनों लिपियाँ प्रचलित मानी जायेगी।

---

1. बाहरी एच.डी. (1980) हिन्दी उद्भव विकास और रूप इलाहबाद, किताब महल

हिन्दुस्तानी सम्प्रदाय के आग्रह से भारत की 14 भाषाओं में हिन्दुस्तानी को भी परिणित किया गया किन्तु उसका कोई विशेष महत्व प्रतिष्ठित नहीं हो पाया।

हिन्दी मध्यप्रदेश की सामान्य भाषा का नाम है। संकीर्ण क्षेत्र में हम उसे अवधी, ब्रज, बुन्देली, भोजपुरी, मारवाड़ी, आदि नामों से पुकारते हैं। उसे अपने छोटे घेरे से निकाल कर प्रत्येक व्यक्ति को बड़े घेरे के लोगों से जिस भाषा में बातचीत करनी पड़ती हैं वह सामान्य हिन्दी हैं। कल वह ब्रजभाषा थी, आज वह खड़ीबोली हैं, आगे चलकर सांस्कृतिक, साहित्यिक या राजनीतिक महत्व पाकर उसी घेरे की कोई और बोली सामान्य भाषा बन सकती हैं । राष्ट्र को एक करने में इसने हमारे पिछले संघर्ष युग में देश का बड़ा उपकार किया है। राष्ट्रभाषा हिन्दी वस्तुतः हमारे राष्ट्रीय सम्मान की वस्तु है।

1.2 समस्या की आवश्यकता एवं महत्व –

एन.सी.एफ. 2005 के अनुसार जब हम घर की भाषा (ओं) और मातृभाषा (ओं) की बात करते हैं तो इसके अंतर्गत घर की भाषा, बड़े कुनबे की भाषा, आस–पड़ोस की भाषा आदि आ जाती है, जो बच्चा स्वाभाविक रूप से अपने घर और समाज के वातावरण से ग्रहण कर लेता है। बच्चों में भाषा की जन्मजात क्षमता होती है। हम रोजमर्रा के अनुभव से जानते हैं कि ज्यादातर बच्चे, स्कूल की शिक्षा की शुरूआत से पहले ही भाषा की जटिलताओं और नियमों को आत्मसात कर पूर्ण भाषिक क्षमता रखते हैं ।

बहुभाषिकता जो बच्चे की अस्मिता का निर्माण करती है और जो भारत के भाषा परिदृश्य का विशिष्ट लक्षण है, उसका संसाधन के रूप में उपयोग, कक्षा की कार्यनीति का हिस्सा बनाना तथा उसे लक्ष्य के रूप में रखना रचनात्मक भाषा शिक्षक का कार्य है। यह केवल उपलब्ध संसाधन का बेहतर इस्तेमाल नहीं है बल्कि इससे यह भी सुनिश्चित हो सकता है कि हर बच्चा स्वीकार्य और संरक्षित अनुभव करें और भाषिक पृष्ठभूमि के आधार पर किसी को पिछे न छोड़ा जाए।

शिक्षा में भाषाओं के लिए आदर्श यही है कि उनका इसी संसाधन के आधार पर विकास हो और साक्षरता के विकास के साथ अकादमिक भाषा के रूप में इसे विकसित करने के लिए समृद्ध भी किया जाय। विद्यार्थियों की भाषिक क्षमता की पहचान से उनका स्वयं के और अपनी सांस्कृतिक जड़ों के प्रति विश्वास भी बढ़ेगा।

कई अध्ययनों से पता चला है कि द्विभाषी क्षमता संज्ञानात्मक वृद्धि, सामाजिक, सहिष्णुता, विस्तृत चिंतन और बौद्धिक उपलब्धियों के स्तर को बढ़ा देती हैं। सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर बहुभाषिकता एक ऐसा संसाधन है जिसकी तुलना किसी भी अन्य राष्ट्रीय संसाधन से की जा सकती है।

भारत की भाषिक विविधता एक जटिल चुनौती तो प्रस्तुत करती ही है लेकिन वह कई प्रकार के अवसर भी देती है। भारत केवल इस मामले में ही अनूठा नहीं है कि यहाँ अनेक प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं बल्कि उन भाषाओं में अनेक भाषा–परिवारों का प्रतिनिधित्व भी है। विश्व के और किसी भी देश में पांच भाषा परिवारों की भाषाएँ नहीं पाई जाती। संरचना के स्तर पर वे इतनी भिन्न है कि उन्हें विभिन्न भाषा परिवारों में वर्गीकृत किया जा सकता हैं। जिनके नाम है – इंडो–आर्यन, द्रविड़, ऑस्ट्रो, एशियाटिक तिब्बतों, वर्मन और अंडमानी ।

विद्यालय में कक्षा 3 के बाद से मौखिक और लिखित माध्यमों से उच्चस्तरीय संवाद कौशल और आलोचनात्मक चिंतन के विकास के प्रयास हों । प्राथमिक स्तर पर बच्चों की भाषाओं को बिना सुधारे उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए जिस रूप में वे होती हैं । कक्षा 4 के बाद यदि समृद्ध और रूचिकर अवसर दिए जाएँ तो बच्चे स्वयं भाषा के मानक रूप को ग्रहण कर लेते हैं लेकिन इस प्रक्रिया के समय बच्चे की घरेलू भाषा के प्रति उचित सम्मान का भाव बना रहना चाहिए।

भाषा शिक्षण केवल भाषा की कक्षा तक सीमित नहीं होता । विज्ञान सामाजिक विज्ञान या गणित की कक्षाएँ भी एक प्रकार से भाषा की ही कक्षा

होती है। किसी विषय को सीखने का अर्थ है उसकी अवधारणाओं को सीखना, उसकी शब्दावली को सीखना, उनके बारे में आलोचनात्मक ढंग से चर्चा करना और उनके बारे में लिख सकना।,

भाषा की शिक्षा कुछ अनूठे अवसर उपलब्ध कराती है। कहानी, कविता, गीतों और नाटकों के माध्यम से बच्चे अपनी सांस्कृति घरोहर से जुड़ते हैं, और इससे उनको अपने अनुभव विकसित करने और दूसरों के प्रति संवेदनशील होने के अवसर मिलते है। हम यह भी स्मरण दिला दें कि बच्चे इस प्रकार की गतिविधियों के माध्यम से व्याकरण भी अधिक सरलता से सीख सकते हैं न कि उबाऊ व्याकरण शिक्षण से ।

तत्सम, तद्भव शब्द विद्यार्थियों को बहुभाषिक बनाने में सहायक होते हैं । इस अध्ययन से यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि विद्यार्थी कितने तत्सम व तद्भव शब्दों को समझते हैं ?

1.3 समस्या कथन –

कक्षा ६ की हिन्दी भाषा पाठ्यपुस्तक में प्रयुक्त तत्सम तथा तद्भव शब्दों में छात्रों की उपलब्धि का परीक्षण।

1.4 उद्देश्य –

इस अध्ययन का उद्देश्य कक्षा ६ की हिन्दी भाषा पाठ्यपुस्तक में प्रयुक्त शब्दों का विश्लेषण करना तथा उन शब्दों में छात्र–छात्राओं की उपलब्धि को ज्ञात करना है। अतः यह स्थूल रूप से दो प्रकार का है–

(अ) कक्षा ६ की हिन्दी भाषा पाठ्यपुस्तक के एक गद्य व एक पद्य पाठ में तत्सम तथा तद्भव शब्दों को ज्ञात करना ।

(ब) (1) तत्सम तथा तद्भव शब्दों में छात्र–छात्राओं की उपलब्धि को ज्ञात करनां।

(2) ग्रामीण तथा शहरी छात्रों की तत्सम शब्दों में उपलब्धि ज्ञात करना ।

(3) ग्रामीण तथा शहरी छात्राओं की तत्सम शब्दों में उपलब्धि ज्ञात करना।

(4) ग्रामीण तथा शहरी छात्रों की तद्भव शब्दों में उपलब्धि ज्ञात करना ।

(5) ग्रामीण तथा शहरी छात्राओं की तद्भव शब्दों में उपलब्धि ज्ञात करना ।

1.5 सीमांकन –

1. भाषा पाठ्यपुस्तक में अनेक शब्द हो सकते हैं यथा–तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी तथा देशज। किन्तु यह अध्ययन तत्सम तथा तद्भव शब्दों तक ही सीमित है।
2. कक्षा ६ के गद्य भाग से एक पाठ व पद्य भाग से एक पाठ तक यह अध्ययन सीमित है। इन पाठों में तत्सम शब्दों तद्भव शब्दों को ज्ञात करने तक ही यह अध्ययन सीमित है।
3. भाषा में विद्यार्थियों की उपलब्धि कई प्रकार की हो सकती है किन्तु यह अध्ययन तत्सम शब्दों तथा तद्भव शब्दों की उपलब्धि तक ही सीमित है।
4. इस अध्ययन के लिये न्यादर्श का चयन भोपाल जिले की एक ग्रामीण व एक शहरी शाला को यादृच्छिक विधि से किया गया हैं। जिसमें कुल 100 विद्यार्थी (50 छात्र, 50 छात्राऐं) थे ।

1.6 पदों व संकल्पनाओं की परिभाषा – हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल से ही हिन्दी भाषा में चार प्रकार के शब्द प्राप्त होंते है– तत्सम तद्भव, देशी और विदेशी। इसमें से जनसाधारण की भाषा में तद्भव और साहित्यिक भाषा में तत्सम शब्दों की अधिकता है।

1. शब्द – "शब्द एक या एक से अधिक अक्षरों के योग से बनी वह ध्वनि है जिससे अपने स्वतंत्र रूप में अथवा किसी वाक्य में प्रस्तुत होने पर एक निश्चित अर्थ का बोध होता हैं।

2. तत्सम – जो शब्द संस्कृत से हिन्दी में उसी रूप में लिए गये हैं जिस रूप में ने संस्कृत में प्रयुक्त होते हैं तत्सम शब्द कहलाते हैं। जैसे–जल,पवन,अग्नि आदि।

साहित्यिक स्तर पर आकर और ज्ञान–विज्ञान का माध्यम बनते हुए हिन्दी को संस्कृत के तत्सम् शब्दों का आश्रय सदा लेना पड़ा हैं। तत्सम शब्द दो प्रकार के है– परंपरागत और निर्मित । परंपरागत वे शब्द हैं जो संस्कृत वांग्मय में उपलब्ध हैं । दूसरे वे शब्द हैं, जो नये विचारों और व्यापारों को

अभिव्यक्त करने के लिए संस्कृत व्याकरण के अनुसार समय–समय पर गढ़ लिये गये हैं। वैज्ञानिकों की माँग को पूरा करने के लिए सैकड़ों–हजारों पारिभाषिक शब्द, संस्कृत स्त्रोंतों से बनाए गये हैं यद्यपि वे संस्कृत अभिधानों में नहीं मिलते । साहित्यकारों ने विशेषतया छायावादी युग और उसके बाद के कवियों ने भी सैकड़ों शब्द गढ़े और न जाने कितने अन्य लेखकों, विचारकों और विद्वानों ने अपनी आवश्यकता के अनुसार तत्सम शब्दावली का निर्माण किया हैं।

परंपरागत कहने का तात्पर्य यह नहीं हैं कि ऐसे शब्द सदा से चले ही आ रहे है। वास्तव में हिन्दी में इनका पुनरूद्धार हुआ है किन्तु यह ठीक है कि ऐसे शब्द संस्कृत वाङ्मय से लिए गये है।

3. तद्भव – संस्कृत प्राकृत आदि की ध्वनियाँ घिस–पिट कर हिन्दी तक आते–आते परिवर्तित हो गई है। परिणामतः पूर्ववर्ती आर्यभाषाओं के शब्दों के जो रूप हमें प्राप्त हुए हैं, उन्हें तद्भव कहा जाता है।

हिन्दी प्रदेश की बोलियों में आनुपातिक दृष्टि से सबसे अधिक संख्या तद्भव शब्दों की है। साहित्य में भी 19वीं शाती से पहले तद्भव शब्दों की ही प्रधानता थी। सचतो यह है कि तब तक जनभाषा ही साहित्यिक भाषा थी। खड़ी–बोली की प्रतिष्ठा के साथ हिन्दी में कृत्रिमता और पंडिताऊपन का प्रवेश होता है। कबीर जायसी, तुलसी, बिहारी, भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रसाद और पंत की भाषा में तद्भव शब्दों की क्रमिक ह्रास स्पष्ट लक्षित होता है। आज की परिनिष्ठित हिन्दी शब्द भण्डार की दृष्टि से तत्सम रूप प्रधान ही है। फिर भी शैली की विविधता और वातावरण की अनुकूलता के नाते तद्भव शब्दों का व्यवहार बराबर होता रहता है, कोई शब्द अव्यवहार्य नहीं हो गया।

हिन्दी के प्रायः सभी सर्वनाम तद्भव है। संज्ञापदों की संख्या सबसे अधिक है, किन्तु इनका व्यवहार देश, काल, पात्र, आदि के अनुसार थोड़ा बहुत घटता–बढ़ता रहता है। क्रियापद भी प्रायः सभी तद्भव हैं परंतु साहित्यिक या उच्च्य हिन्दी में इनका स्थान "करना होना" क्रिया के साथ संस्कृत का कृदन्त

रूप ले लेता हैं, जैसे परिचित होना (जानना), स्वीकार करना (सकारना,मानना), ह्रासमान होना (घटना), विकृत करना (बिगाड़ना), उल्लघन करना (लाँघना) आदि। भारतेन्दु युग से पहले की साहित्यिक हिन्दी में ठेठ क्रियापदों का प्राचुर्य है। यह सच हैं कि विशेषणों के लिए हिन्दी को संस्कृत का मुँह ताकना पड़ा है – संस्कृत में विशेषण पदों का निर्माण भी सहज में हो जाता है। तद्भव विशेषण हिन्दी में कम है। अव्ययों में यहाँ, जहाँ, कहाँ, अब, तब, जब, कब, चाहे, मानो, तक, ज्यों, क्यों, आगे, पीछे, नीचे, ऊपर, फिर, कैसे, जैसे, ऐसे, वैसे, तो, ही, भी और आदि शब्द कभी स्थानच्युत नहीं किये जा सकते ।

हिन्दी भाषा में शब्द चार प्रकार के पाए जाते हैं– तत्सम्, तद्भव, देशी और विदेशी।

हिन्दी में शब्दों का अनुपात

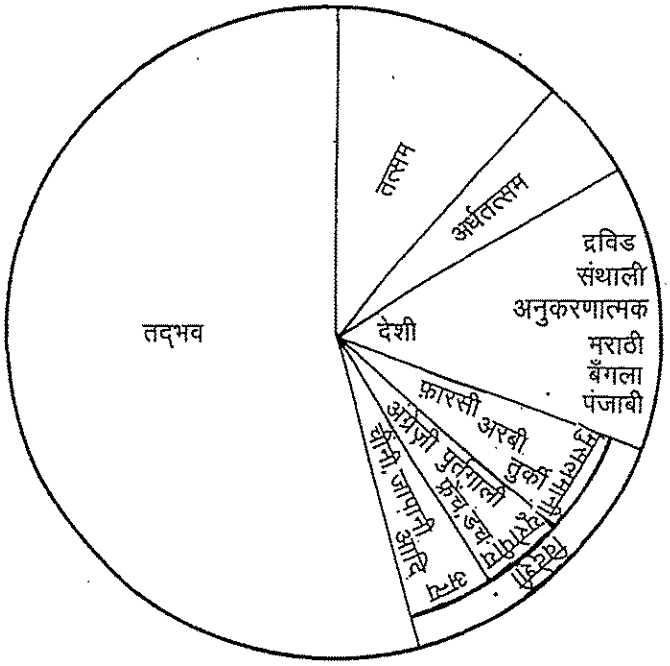

तद्भव शब्दों को हिन्दी में पचपन या साठ प्रतिशत माना जा सकता है। इन शब्दों की संख्या सर्वाधिक है। डॉ. बाहरी ने प्रस्तुत वृत्त से हिन्दी के शब्दों का निर्धारण करने का प्रयास किया है। इस वृत्त से शब्दों का अनुपात देखा जा सकता है। इस चक्र में देशी शब्दों का अनुपात लगभग पच्चीस प्रतिशत हैं, तथा तद्भव शब्दों का अनुपात लगभग पंद्रह प्रतिशत हैं तथा विदेशी शब्दों का अनुपात लगभग पांच प्रतिशत है ।

————0————